सुशीला टाकभौरे

4 मार्च, 1954, बानापुरा, जिला होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में सुशीला टाकभौरे का जन्म हुआ। आपने एम.ए.(हिन्दी साहित्य), एम.ए. (अम्बेडकर विचारधारा), बी.एड., पी-एच.डी. (हिन्दी साहित्य) तक की शिक्षा पूरी की। कहानी, नाटक, विविध लेख और आत्मकथा आदि विधाओं में लेखन किया। आपकी चर्चित कृतियों में हैं— 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी' (विवरण), 'परिवर्तन जरूरी है' (लेख संग्रह), 'टूटता वहम', 'अनुभूति के घेरे' (कहानी संग्रह), 'हमारे हिस्से का सूरज' (कविता संग्रह), 'नंगा सत्य' (नाटक), 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा)।

आपकी लेखनी में विचारों की रोशनी दमक उठती है। नारी की दुर्दशा, उसके पैरों में धर्मशास्त्रों द्वारा डाली गई बेड़ियाँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, पुरुष सत्ता आदि से सम्बन्धित प्रश्न उठाकर पुरुष समाज को खुली चुनौती देती है।

कथा सार

'जरा समझो' सुशीला टाकभौरे की एक प्रगतिशील, मौलिक कहानी है। इस कहानी में वर्तमान समय में सुशिक्षित लोगों में स्थित जाति-पाति की प्रचलित सामाजिक समस्या को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। हम पढ़-लिखकर पद प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन हम अभी भी अमानवीय, जाति-पाति, छुआ-छूत के बंधनों में लिप्त हैं। आवश्यकता है इससे बाहर आने की। इन्सान के रूप में हमें अपने-आप को स्थापित करना होगा। कहानी में अजय एक प्रगतिशील व्यक्ति के रूप में इन्सानियत का सन्देश देना चाहता है—'मैं इन्सान को महत्त्व देता हूँ, फिर वह किसी क्षेत्र का हो, किसी भी जाति का हो या किसी भी धर्म का हो—इंसान होना जरूरी है।' हमें अपने सीमित धर्म की बजाय व्यापक मानव धर्म को अपनाना होगा, यही कहानी का मुख्य सन्देश है। यह कहानी सामाजिक समता को स्थापित करते हुए आपसी भेदभाव को नष्ट कर हम सभी को समानता का सन्देश देती है। सुशीला टाकभौरे की यह प्रगतिशील कहानी बन पड़ी है।

जरा समझो

''जय श्रीराम...जय श्रीराम...जय श्रीराम''

फोर व्हीलर गाड़ी का रिवर्स का हॉर्न गूँजने लगा। जिसने अपनी गाड़ी में रिवर्स का यह हॉर्न लगाया है, वह निश्चित ही रामभगत होगा—ऐसा कोई भी सोच समझ सकता है। ड्राइविंग सीट पर बैठा गाड़ी का मालिक अजय पंडित पीछे देखते हुए, गाडी साइड में लेने लगा।

'जय श्रीराम' की गूँजती हुई आवाज ऐसी लग रही है, मानो बहुत बड़े जुलूस में आन्दोलन का नारा लगाया जा रहा हो। सड़क से लेकर ऑफिस तक के लोगों का ध्यान गाड़ी के हॉर्न ने आकर्षित किया। शायद उन्हें यह भी लगा हो कि गाड़ी खड़ी होने पर गाड़ी से रामभक्त उतरेंगे।

एक समय ऐसा था जब नागपुर में हिन्दू कहलाने वाली हर जाति रामभक्त ही मानी जाती थी, मगर अब समय बदल रहा है। सबके अपने-अपने विचार हैं, अपनी आस्था है, अपनी भक्ति है और अपनी शक्ति है। कोई शिवाजी महाराज और जीजा माता को मान रहा है, कोई ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले को मान रहा है, कोई डॉ. आम्बेडकर को मान रहा है। बड़ी संख्या में लोग इन्हें मानने लगे हैं और लाखों की संख्या में जुलूस निकालकर इनके नारे लगाने लगे हैं—

''जय शिवराय...जय जिजाऊ...''

''जय भीम का नारा है...भारत देश हमारा है...''

ऐसे में 'जय श्रीराम' का नारा कुछ लोगों में धार्मिक उन्माद उकसाने का काम कर सकता है, तो बहुसंख्य लोगों को भड़काने का काम भी कर सकता है।

एक दिन ऑफिस के मैनेजर साहब ने अजय को समझाने वाले अन्दाज में धीरे से कहा—''अजय, यह हॉर्न इस तरह गाड़ी में मत लगाओ। कभी कोई दुर्घटना हो सकती है।''

अजय कुछ समझा नहीं। उसने पूछा—''इस हॉर्न को लगाने से दुर्घटना कैसे हो सकती है?''

''हो सकती है। आप समझते नहीं हो।'' मैनेजर साहब ने धीरे से कहा।

अजय ने ऊँची आवाज में कहा—''नहीं, मैं यह नहीं कहता कि 'जय श्रीराम'

बोलने से दुर्घटना नहीं होगी। मेरा मतलब है कि इस हॉर्न का और दुर्घटना का क्या सम्बन्ध है?''

मैनेजर साहब ने इशारे से धीरे बोलने का संकेत करते हुए, बहुत धीरे से कहा—''आप समय की नजाकत को नहीं जानते हो। जरा समझा करो भाई...।''

अजय पंडित समय की नजाकत वाली बात नहीं समझ पाया। अपना सिर, खुजाते हुए वह अपने आप से बोला—''गाड़ी मेरी है, मैं उसका मालिक हूँ। मेरी मर्जी है, मैं गाड़ी में कौन-सा हॉर्न लगाऊँ, इससे दूसरों को क्यों तकलीफ है?''

अजय सामान्य क्लर्क है। मगर उसके साथ मैनेजर साहब का व्यवहार बहुत ही सम्मानपूर्ण और अपनेपन का रहता है। वे अक्सर अजय से पूछते हैं—''आप कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण हैं न?''

अजय कहता है—''कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण होने से क्या होता है?'' मैनेजर साहब अपनेपन से समझाते हैं—''आप कोंकण के हैं, इसका आपको अभिमान नहीं है क्या? आपको इसका अभिमान होना चाहिए।''

अजय सहजता से कहता है—''सर, अभिमान होने से क्या होता है? अभिमान किस बात का? कहीं के भी हो सकते हैं?''

मैनेजर साहब को ब्राह्मण होने का गर्व है। वे स्वयं को कोंकण का चितपावन ब्राह्मण कहलाना गर्व की बात मानते हैं, क्योंकि इसका अपना इतिहास है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले कोंकण के ब्राह्मणों ने अपने बुद्धि और चातुर्य से अंग्रेजों से बहुत कुछ पाया था—पद-मान, धन-वैभव और रंग-रूप, सौन्दर्य भी।

मैनेजर साहब ने स्पष्ट किया—''आप समझे नहीं, अभिमान होना चाहिए। आप कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण हैं। मैं भी कोंकणस्थ ब्राह्मण हूँ। हम परशुराम के वंशज हैं। वही परशुराम, जिसने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया। जिनके सामने वैश्य और शूद्र कुछ भी नहीं हैं। उस सनातन धर्म को मानने वाले हम अपनी परम्पराओं की रक्षा करते हैं। हम सर्वश्रेष्ठ हैं। हम सबसे अधिक बौद्धिक तेज से सम्पन्न हैं। हमें अपनी जाति और धर्म का अभिमान होना चाहिए।''

अजय ने एक बार में सारी बात स्पष्ट करने की दृष्टि से बताया—''सर, असल में क्या है कि, मेरे पिता का पूरा जीवन नागपुर में बीता। मैं भी नागपुर में ही 1958 में पैदा हुआ। मेरे दादा भी कोंकण में नहीं रहे। हाँ, उनके पिताजी, यानी मेरे दादा के पिताजी कोंकण से आए थे। मेरे दादा से पहले की पीढ़ी कोंकण में थी। हम तीन पीढ़ी से कोंकण में नहीं हैं। न हमको वहाँ का कुछ पता है और न वहाँ के कुछ रीति-रिवाज ही मालूम हैं। फिर खुद को कोंकणस्थ कैसे कहें?''

मैनेजर साहब ने कहा—''तो क्या हुआ? आपके दादा के पिताजी, यानी आपके परदादा कोंकण के थे। जो कोंकण के हैं, वे कोंकण के ही कहलायेंगे।

भले ही उनकी पीढ़ियाँ बाद में कहीं भी रहें। आप भी कोंकणस्थ हो। कोंकणस्थ ब्राह्मण कहलाना अपने आप में बड़े गौरव की बात है। यह हमारी परम्परा रही है।''

अजय ने फिर से अपनी बात स्पष्ट की—''असल में कोंकणस्थ ब्राहाण बहुत गोरे होते हैं। उनकी आँखें कंजी, गिजरी, भूरी, अंग्रेजों जैसी होती हैं। अपना ऐसा कुछ नहीं।''

अजय का रंग साँवला है। आँखें साधारण काली हैं। वह स्वयं को कभी कोंकणस्थ नहीं मानता, फिर भी उससे बार-बार यही पूछा जाता है—''आप कोंकणस्थ हैं न?'' अजय से जब भी यह प्रश्न पूछा जाता, वह परेशानी महसूस करता। चूँकि पूछने वाले ऑफिस के मैनेजर साहब हैं, इसलिए वह उन्हें दो टूक जवाब भी नहीं दे पाता है, इसलिए और अधिक परेशानी होती है।

वह जानता है, मैनेजर साहब भी कई पीढ़ी से नागपुर में रहते हैं। उनके पिता पूजा-पाठ का काम करते हुए हिन्दू-धर्म प्रचार का काम करते थे। वे भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हिन्दू धर्म प्रचार का काम करते रहते हैं, मगर वे होशियार हैं। बदलते समय को पहचान रहे हैं। अत: समय और अवसर को देखकर ही बात करते हैं। कब धर्म प्रचार की बात करनी है और कब चुप रहना है—वे खूब जानते हैं।

ऑफिस के बाद, घर जाने के पहले थोड़ी देर रुककर मैनेजर साहब आपस की बातें जरूर करते हैं, तब ऑफिस के अन्य लोग भी साथ रहते हैं। ऐसे ही समय में एक बार मैनेजर साहब ने अजय से कहा—''अजय, आप कोंकणस्थ हैं न?''

सबके सामने पूछा गया वही पुराना प्रश्न सुनकर अजय को गुस्सा आ गया। वह थोड़ी ऊँची आवाज में बोला—''सर, कोंकणस्थ हों या कहीं का भी हों, सबसे पहले इंसान होना जरूरी है। मैं इंसान को महत्त्व देता हूँ, फिर वह किसी भी क्षेत्र का हो, किसी भी जाति का हो या किसी भी धर्म का हो—इंसान होना जरूरी है।''

अजय की ऊँची आवाज सुनकर मैनेजर साहब सिटपिटा गए। अन्य सभी लोग अजय के विचारों से बहुत प्रभावित हुए। वे आपस में कहने लगे—''सचमुच, अजय के विचार कितने महान हैं। ऐसे ही विचार होने चाहिए।''

सबकी बातें सुनकर खेमचन्द उत्साह से ऊँची आवाज में कहने लगा—''जाति धर्म की बातें ही इनसानों को अलग-अलग बाँटती हैं। यदि हम इनसे ऊपर उठकर सोचें, तो आपसी मतभेद ही न रहे। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध—सब आपस में हिल-मिल कर रह सकते हैं। सब अपना धर्म मानते हुए आपस में प्रेम के साथ रह सकते हैं, मगर इसके लिए मानव धर्म को मानने वाले विचार भी होने चाहिए। इन्सानियत की भावना भी जरूरी है।''

खेमचन्द की बातें सुनकर विजय बाबू मुस्कुराये। उन्होंने व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष के साथ मैनेजर साहब को देखते हुए कहा—''अजय की तरह यदि सभी लोग ऐसे

सोचने लगें, तो न तो गुजरात 2002 जैसा कांड होगा और न ही गोहाना कांड जैसे कांड होंगे।''

खेमचन्द वैसे तो हमेशा सिर झुकाये, चुपचाप अपने काम में लगा रहता है मगर इस समय बड़े साहब के साथ विजय से बोला—''मैनेजर साहब ब्राह्मण हैं मगर अजय पंडित भी तो ब्राह्मण है। दोनों की विचारधारा में कितना अन्तर है? क्या सभी लोग अजय जैसे नहीं बन सकते?'' इन बातों के बीच से मैनेजर साहब अपनी गाड़ी में बैठकर वहाँ से जल्दी ही निकल गए। उस दिन के बाद, उन्होंने अजय से वह प्रश्न नहीं पूछा।

अजय नयी पीढ़ी का आधुनिक युवक है। वह प्रगतिशील विचारों को मानता है। जातिवाद और वर्णभेद को महत्त्व नहीं देता। ब्राह्मण होने पर भी, वह शुरू से समतावादी-प्रगतिवादी विचारधारा वाले लोगों के साथ रहा है। इसलिए वह खेमचन्द और विजय को अलग नहीं मानता।

खेमचन्द राठौर ऑफिस में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। वह वहाँ सफाई और चपरासी का काम करता है। वैसे चपरासी के काम के लिये अन्य वर्ण के लोगों को ही रखा जाता है। मगर यहाँ उसे चपरासी का काम भी करना पड़ता है। मैनेजर साहब अपने चेम्बर में घंटी बजाते हैं, खेमचन्द तुरन्त हाजिर हो जाता है। साहब अपने टेबल की फाइल दूसरे टेबल पर ले जाने और वहाँ की फाइल अपने टेबल पर लाने के लिये कहते हैं।

ऑफिस में सफाई का काम दिन भर में दो बार या सुबह शाम का ही रहता है। दिन भर खाली रहने वाले खेमचन्द को काम बताना भी जरूरी है। ऑफिस के झाड़-पोछे के बाद, खेमचन्द हाथ-पैर धोकर चपरासी के काम के लिए तैयार रहता है। अजय उसी से पानी मँगवाता है। वह तुरंत पानी लाकर अजय के साथ पूरे स्टाफ को पानी पिलाता है। ऑफिस की कर्मचारी पदाधिकारी महाराष्ट्रियन सवर्ण महिलाएँ अक्सर उससे पूछ ही लेती हैं—''खेमचन्द, ठीक से हाथ धोये थे न? गिलास को अच्छे से धोया था न?''

खेमचन्द हँसकर कहता है—''जी मैडम जी।'' ये सवर्ण महिलाएँ खेमचन्द के कपड़े, हाथ-पैर और काम को देखकर मन-ही-मन उससे छुआछूत मानती हैं। वे अपनी पानी की बोतल साथ रखती हैं।

मैनेजर साहब के दिल में क्या है, साफ-साफ पता नहीं चल पाता, फिर भी सबकी बातों और विचारों को सुनकर वे चुप रह जाते हैं। मगर इतना जरूर है, खेमचन्द को सामने देखकर वे उसके हाथ-पैरों और कपड़ों का निरीक्षण जरूर करते हैं। वे विजय को डाँटकर कहते हैं—''कम-से-कम मेरे चेम्बर में पानी तुम पहुँचाया करो।''

ओ.बी.सी. कोटे का विजय यादव तमककर कहता है—''साहब, इतना काम है। मैं नौकरी छोड़ दूँगा। इतना काम मुझसे नहीं होता।'' तब साहब चुप रह जाते।

असल में ऑफिस में चपरासी के लिए विजय यादव की नियुक्ति हुई है मगर एच.एस.सी. पास विजय को चपरासी के बजाय बाबू का कार्यभार सँभालना पड़ता है। बाबू का काम करते-करते वह पूरा बाबू बन गया है। ऑफिस में काम ज्यादा है और लोग कम हैं। यह स्थिति और अपने टेबल का पेंडिंग वर्क बताते हुए विजय चपरासी का काम खेमचन्द से ही करवाने की बात करता है।

महात्मा ज्योतिराव फुले और उनकी विचारधारा को मानने वाला विजय हमेशा यही कोशिश करता है कि ऑफिस के लोग खेमचन्द के साथ जातिवादी भेदभाव न करें। इस दृष्टि से वह पानी देने का काम खेमचन्द से ही करवाता है। इसके कारण वह कभी खेमचन्द से सामाजिक समानता के अधिकारों की बात करता है और कभी मानव अधिकारों की बातें करते हुए, बुलन्द आवाज में कहता है—''हम सब इंसान हैं। हमें आपस में कभी किसी से भेदभाव नहीं करना चाहिए। हम सब बराबर हैं। बीसवीं शताब्दी खत्म हो रही है और इक्कीसवीं शताब्दी आ गई है। आखिर हम इन बातों को कब समझेंगे?''

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी खेमचन्द को अपना यह चपरासी का काम बहुत भला लगता है। इसमें उसे गौरव महसूस होता है। वह सोचता है—'थोड़ा से सही, कुछ तो ऊपर उठे।' अब वह लोगों के पास जाकर बातें कर सकता है। उन्हें पानी भी पिला सकता है। नहीं तो पहले? विजय खेमचन्द को, हँसते हुए आँख मारकर कहता है—''पिला सबको पानी। इन्होंने अपने बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर को पानी नहीं पीने दिया था। अब तुम इनको पानी पिलाओ।'' खेमचन्द ने सुना है, डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने महाड़ के चावदार तालाब का पानी लेने के लिए आन्दोलन किया था।

एक बार ऑफिस के समय के बाद मैनेजर साहब कुर्सी पर बैठे कुछ सोच रहे थे। उन्हें खाली बैठा देखकर खेमचन्द सामने आकर खड़ा हो गया। मैनेजर साहब आत्मीयता दिखाते हुए उसके घर-परिवार का हालचाल पूछने लगे। साहब का अपनापन देखकर, खेमचन्द भी उनसे इधर-उधर की बातें पूछता रहता है।

उस दिन खेमचन्द ने साहब से पूछा—''साहब, ये 'गोधराकांड' क्या है?'' मैनेजर साहब ने उसे डाँटते हुए कहा—''तुमको गोधराकांड नहीं मालूम? अरे, वहाँ...गुजरात में हिन्दुओं को इतना सताया...परेशान किया, ट्रेन में आग लगा दी...तुमको कुछ नहीं मालूम....?''

खेमचन्द को अचानक याद आया—''हाँ...हाँ...हमने टी.वी. में देखा था। गुजरात 2002 कांड के बारे में रेडियो में सुना था...समाचार-पत्रों में भी खबरें छपी थीं...ट्रेन में आग लगी थी। मगर सर, हमने तो सुना है कि वह उन दूसरे लोगों को बहुत सताया गया...उनकी बस्तियाँ जलाईं...उनके बच्चों को आग में झोंका...उनकी लड़कियों को...''

मैनेजर साहब ने तुरन्त उसे रोकते हुए कहा—"नहीं...नहीं। ऐसा कुछ नहीं है। वे सब गलत खबरें थीं। सही बातें हम बता रहे हैं। वहीं, उन लोगों ने हमको सताया था।"

खेमचन्द को लगा मैनेजर साहब सही बात नहीं बता रहे हैं। या तो इन्हें सही जानकारी नहीं है, या फिर ये जानबूझ कर खबर को अपने ढंग से बता रहे हैं। क्योंकि वह जानता है, सरकारी मीडिया के अलावा अनेक प्राइवेट संस्थाओं, एन.जी.ओ. के सदस्यों ने वहाँ जाकर सही बात का पता लगाया था। मरने वालों और पीड़ितों के सही आँकड़े इकट्ठे किए थे। किसने किसको सताया है—इस बात का भी सही पता लगाया था। उसने तो यहाँ तक सुना था कि प्लान बनाकर दंगा कराया गया और आतंक फैलाया गया था। पुलिस और सरकार भी उन्हें नहीं रोक सकी, सब चुपचाप देखते रहे। मैनेजर साहब की बात सुनकर उसे बड़ी हैरत हुई।

खेमचन्द को 'गोहानाकांड' के विषय में पूरी जानकारी है। वाल्मीकि बस्तियों में 'गोहानाकांड' की खूब चर्चा थी। उनकी बड़ी-बड़ी मीटिंग भी हुई थीं। सब लोगों ने मिलकर जुलूस निकाले थे। कलेक्टर ऑफिस के सामने उन्होंने 'धरना' भी दिया था। खेमचन्द भी जुलूस में गया था। उसने भी नारे लगाए थे—"जो हमसे टकरायेगा, मिट्टी में मिल जायेगा..."

वह जानता है, हरियाण राज्य के गोहाना गाँव की वाल्मीकि बस्ती में किसने आग लगाई थी। बस्ती के लगभग पचास घर जल गए थे। घरों का सामान जानकर राख हो गया था। केवल लोगों की जान बची थी, क्योंकि यह पूर्व नियोजित साजिश थी। सबको पता था कि आग लगाई जाएगी मगर आग लगाने वालों को कोई भी रोक नहीं सकता था, न सरकार, न पुलिस। क्योंकि वह ताकतवर लोग थे। इसलिए मजबूर पुलिस ने बस्ती के दलित लोगों को, अपनी जान बचाने के लिए, वहाँ से सुरक्षित स्थान पर जाने के लिए मजबूर किया। इस तरह उनकी जान बच सकी थी।

जानकारी होने के बाद भी खेमचन्द ने मैनेजर साहब से पूछा—"साहब, और ये गोहानाकांड क्या है?"

मैनेजर साहब ने अपने हाथों के पंजे कानों के पास ले जाकर झटके, मानो बात को यूँ ही दूर हटा रहे हों। फिर माथे पर बल डालकर बोले—"अरे, वह कुछ नहीं है। बस एक लड़के की नासमझी में यह कांड हुआ। बाकी कुछ नहीं है। कोई घर नहीं जले। बस, एक दो बार थोड़ा बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं।"

खेमचन्द चुप हो गया। मगर उसने समझ लिया कि हमारे मैनेजर साहब किस तरह किसी बात को बदलकर और घटा-बढ़ाकर बताते हैं। उसने सोच लिया—"मैनेजर साहब झूठे हैं, ढोंगी हैं। अपने लाभ के लिए सबको गुमराह करते हैं। मैं उनकी किसी बात पर कभी विश्वास नहीं करूँगा।"

जब मैनेजर साहब नहीं रहते हैं, तब अजय, विजय और खेमचन्द खुलकर बातें करते हैं।

वे हँसते हैं, दकियानूसी लोगों की खिल्ली उड़ाते हैं, धार्मिक आडम्बरों की बुराई करते हैं, वे वर्ण-भेद, जाति भेद और कॉमवाद की बातों को असामाजिक और अनावश्यक सहते हैं।

विजय कहता—''अब कहाँ वह समय रहा है कि लोग ??? को सच मानें? अवैज्ञानिक बातों के आधार पर किसी को छोटा और किसी को ??? अब नहीं मान सकते। अब सच्चाई सभी जान गए हैं। अब किसी को बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। दबे-कुचले शोषित-पीड़ित भी इंसान हैं...सब बराबर के इंसान हैं...''

अजय कहता—''वर्ण, जाति और धार्मिक आडम्बरों की बातों को मैं बकवास मानता हूँ। किसी भगवान में इतनी ताकत नहीं है कि वह अपनी पूजा स्वयं करवा सके। यह तो लोग हैं, जो भगवान की पूजा करके, उसके नाम पर खुद को बड़ा कहते हैं। यह सब हमारा दोष है, हमारे पूर्वजों का दोष है। यह सब उन लोगों का ढोंग है, चालबाजी है, कुटिलता है। अपनी बेईमानी से वे अच्छी बातों को भी खराब बना देते हैं, अच्छे सम्बन्धों को बिगाड़ देते हैं...''

खेमचन्द ज्यादा नहीं बोलता, वह सबकी बातें ध्यान से सुनकर समझता है और मन-ही-मन उसका आकलन करता है। कभी गुस्से में वह भी कह देता है कि ''ये जात-पात इंसानों ने बनाए हैं। और कहते हैं, जात-पात भगवान ने बनाई है। कहाँ है भगवान? हमारे काम का बँटवारा जिन्होंने किया है, यदि उनसे काम करवाये जायें, तो कैसा लगेगा?''

अजय को बहुत दिनों के बाद मैनेजर साहब की बात समझ में आई। महाराष्ट्र में 'जय श्रीराम' के नारे के समानान्तर—'जय भीम' का नारा बहुत जोर-शोर के साथ चलता है। धीरे-धीरे 'जय भीम' का नारा ज्यादा बुलन्द और ताकतवर होता जा रहा है। ऐसे समय में गाड़ी का हॉर्न 'जय श्रीराम' लगाकर, खुद को अलग से रामभक्त हिन्दू बताया जाये। यह बात अजय को ठीक नहीं लगी।

अब वह भी समय की नजाकत को समझने लगा। जाति, वर्ग-भेद की बात अब वह नहीं करता—न समर्थन, न विरोध। खेमचन्द और विजय के प्रति उसके भाव बदलने लगे। अब वह स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगा था। गम्भीरता के साथ सोचकर उसने गाड़ी का हॉर्न बदलवाना चाहा। फिर न जाने क्या सोचकर उसने अपनी वह गाड़ी ही बेच दी। इस तरह यह किस्सा खत्म हुआ।

क्या यह किस्सा इस तरह खत्म हो सकता है? इस किस्से से जुड़े अनेक पहलू, अनेक प्रश्न समस्याओं के रूप में मौजूद हैं—खेमचन्द अब अपनी दलित, शोषित, पीड़ित स्थिति की सच्चाई समझने लगा है। वह हर समय चिन्तन में डूबकर सोचता है—क्या सचमुच वह अपनी स्थिति से, थोड़ा ही सही, कुछ ऊपर उठ सका है?

अथवा क्या यह मात्र दिवास्वप्न है? सफाई कर्मचारी के साथ चपरासी बनकर, क्या उसे मान-सम्मान मिल सकता है? शायद कभी नहीं, बाबू बनकर भी उसे सम्मान और समानता नहीं मिल सकती।

वह तर्क के साथ बार-बार विचार करता है—क्या विजय जैसे लोग, उस जैसे लोगों की मदद करते हैं? अथवा अपने दोहरे व्यवहार से वे अपना ही लाभ देखते हैं।

क्या अजय की तरह लोग सहज ही ऐसी भावना रख सकते हैं? अथवा उनकी कथनी और करनी में अन्तर रहता ही है? क्या अन्ततः वे अपने ऊँचे स्थान और उच्चता के मान-सम्मान की रक्षा के लिए सतर्क नहीं रहते?

क्या मैनेजर साहब जैसे लोग, अपनी कुटिलता और अवसरवादिता पर भी शर्मिन्दा नहीं होते? क्या वह दिन कभी आएगा, जब वे खुद पर शर्म महसूस करेंगे?

खेमचन्द ने स्वयं को समझाया—समाज में अनेक समस्याएँ हैं। जरा समझो, समस्याओं के रहते किस्सा कैसे खत्म होगा? जातिभेद मानने वाले क्या कभी उनसे अच्छा व्यवहार करेंगे। कभी उन्हें अपने बराबर मानेंगे? इनसे बराबरी का सम्मान पाने के लिए जरूरी है उच्च-शिक्षा पाना, ऊँचे पदों पर सम्मान की नौकरी करना।

अब खेमचन्द सोते-जागते यही सपना देखता है—वह कड़ी मेहनत और लगन के साथ लगातार पढ़ाई कर रहा है। शिक्षा और संघर्ष के साथ प्रगति करते-करते एक दिन वह ऑफिस का मैनेजर बन गया है। फिर वह अपनी फोर व्हीलर गाड़ी खरीदता है। वह अपनी गाड़ी में रिवर्स का हॉर्न लगाता है—''जय भीम...जय भीम...जय भीम...''

उसके हाथों में सत्ता है, ताकत है। ऑफिस के सभी लोग उसका आदर करते हैं। सभी लोग गाड़ी का 'जय भीम' का हॉर्न सुनते हुए खेमचन्द को और उसकी गाड़ी को सम्मान के साथ देखते हैं। साथ ही, वे भी कहते हैं—''जय भीम...जय भीम...जय भीम...''